झारखंड में सत्ता का बंटवारा

झारखंड को बिहार से अलग करवाये जाने के पीछे मुख्य तर्क यह था कि इससे राज्य का आर्थिक विकास होगा। इससे ऐसा लगता है कि बिहार अपने एक इलाके के शोषण में लगा हुआ था। लेकिन बात सिर्फ़ यही नहीं, झारखंड का निर्माण सत्ता की लूट के लिए किया गया था। झारखंड बिहार का एक ऐसा क्षेत्र था जो खनिज पदार्थों की दृष्टि से देश में अव्वल कहा जा सकता है। पर इसका कोई फायदा बिहार को नहीं मिला और न ही झारखंड क्षेत्र को। केंद्र सरकार ने इस क्षेत्र को अपना आंतरिक उपनिवेश बना लिया और यहां के खनिजों की कीमत पर देश के दूसरे क्षेत्रों का आर्थिक विकास करने में लगी रही।

यह केंद्र सरकार की ऐसी शोषणपरक नीति थी जिसने बिहार और अब झारखंड के चंद शोषकों और नौकरशाहों को छोड़ दिया जाये तो बाकी को कंगाल बना दिया। इसका खामियाजा अब सरकार को नक्सलवाद के उभार के रूप में भुगतना पड़ रहा है, पर आजादी मिलने के बाद नेहरू और बाद में इंदिरा के नेतृत्व में केंद्र सरकार ने बिहार के आदिवासी इलाके यानी झारखंड का इतना अधिक शोषण किया कि उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है।

इस शोषण के बलबूते पर उसने देश के दूसरे क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की आधारशिला रखी और केंद्र को मजबूत बनाया, पर बिहार के आदिवासी इलाकों के मूल निवासियों को असहाय बना कर छोड़ दिया। गौरतलब है कि ऐसा इसने सिर्फ बिहार के साथ ही नहीं किया, बल्कि खनिज पदार्थों की दृष्टि से समृद्ध सभी राज्यों के साथ ही ऐसा किया। इसी का परिणाम है कि आज उन इलाकों के लोग रोटी के लिए तरस रहे हैं और उनकी भूख की ज्वाला से वहां नक्सलवाद धधक रहा है। आजादी मिलने के पूर्व आदिवासी क्षेत्रों की लूट का काम ब्रिटिश सरकार कर रही थी। औपनिवेशिक लूट के खिलाफ़ आदिवासियों ने एक नहीं, अनेकों सशस्त्र संघर्ष चलाये। उनके संघर्ष की गौरव गाथायें भारतीय इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। अंग्रेज़ों को बड़ी मुश्किलों के बाद आदिवासियों के विद्रोहों और उनके संघर्षों पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली थी। आजादी मिलने के बाद देश पर कांग्रेस का शासन स्थापित हुआ। यानी गोरे अंग्रेज़ चले गये और उनकी जगह काले अंग्रेज़ अपनी ही जनता का शोषण करने के लिए सामने आये। इन्होंने जम कर देश को लूटा और इस लूट का एक अच्छा-खासा हिस्सा अपने साम्राज्यवादी मालिकों को भी देते रहे जिन्होंने एक समझौते के तहत इन्हें देश की सत्ता सौंपी थी।

आजादी के बाद केंद्र के साथ ही लगभग सभी राज्यों में भी लंबे समय तक कांग्रेस का ही शासन बना रहा। इसलिए इन्हें बिहार के आदिवासी इलाकों को लूटने में किसी तरह की बाधा सामने नहीं आई। बिहार के आदिवासी इलाकों के लोग भूखे-नंगे बिलबिलाते रहे, पर सरकार ने कभी भी उस क्षेत्र के विकास के संबंध में सोचने की जरूरत नहीं समझी। यही नहीं, जंगल और वनोपज कानून बना कर आदिवासियों को उनके परंपरागत पेट भरने के साधनों से भी वंचित करने का प्रयास किया। इसके खिलाफ़ आदिवासियों में असंतोष और गुस्सा भड़कना स्वाभाविक ही था, क्योंकि जंगलों की अकूत दौलत के स्वामी होने के बावजूद उन्हें भिखारियों-सा जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। मज़दूरी करने के लिए आदिवासी दूसरे राज्यों में पलायन कर रहे थे और उनकी औरतों को देह-

> **झारखंड के लोगों का भला तभी हो सकता है जब वे हर किस्म के शोषकों और लुटेरों के खिलाफ़ संगठित हो जायें और सत्ता के लोभ में पड़े बिना लगातार अपना संघर्ष जारी रखें, भले ही इसके लिए उन्हें कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। अगर झारखंड के लोग राज्य से खनिजों के बाहर ले जाने पर पाबंदी लगा दें तो केंद्र सरकार को भी दिन में तारे दिखाई पड़ने लगेंगे।**

व्यापार के धंधे में उतारा जा रहा था। ब्रिटिश शासकों से मिली 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का अनुसरण करते हुए केंद्र सरकार और राज्य में उनके लगुओं-भगुओं ने आदिवासियों को यह कह कर गुमराह करने की कोशिश की कि उनकी दुर्दशा का मुख्य कारण बिहार है। बिहार उनके संसाधनों को लूट रहा है। पर ऐसा तो केंद्र सरकार कर रही थी और इस लूट में सहयोगी राज्य सरकार की तरफ भी कुछ टुकड़े फेंक रही थी। आदिवासियों को यह कह कर बहुत पहले से ही बरगलाया जा रहा था। केंद्र सरकार की शोषक नीतियों के खिलाफ राज्य में आदिवासियों का एक नेतृत्व खड़ा हो गया था, पर उसके पास एक स्पष्ट दृष्टि का अभाव था। यह नेतृत्व केंद्र सरकार के इस भुलावे में आ गया कि सचमुच आदिवासियों की दुर्दशा का मूल कारण राज्य सरकार ही है और इस तरह झारखंड नाम का एक नया राज्य बनाने का आंदोलन जोर पकड़ गया। केंद्र सरकार को इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला था कि बिहार का बंटवारा हो और झारखंड नाम का एक नया राज्य बन जाये। उसे तो राज्य की लूट के लिए वहां के शासकों के सामने कुछ टुकड़े फेंकने थे और इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि ये टुकड़े बिहार के शासकों के सामने फेंके जायें या झारखंड के शासकों के सामने।

बहरहाल, लंबी उठापटक और खींचातानी के बाद बिहार से झारखंड अलग हो गया। झारखंड के अलग होने के बाद भारतीय जनता पार्टी वहां सत्ता में आई और एक आदिवासी को मुख्यमंत्री बनाया गया। पर आदिवासी मुख्यमंत्री आदिवासियों की समस्या का समाधान कर पाने में असफल रहा। झारखंड की लूट के कुछ टुकड़े जो पहले बिहार के शासकों के सामनें फेंके जाते थे, अब झारखंड के शासकों के सामने फेंके जाने लगे। वैसे भी भाजपा और कांग्रेस की नीतियों में कोई बुनियादी फर्क नहीं है सिवा इसके कि कांग्रेस जहां अल्पसख्यंक और बहुसंख्यक, दोनों तरह की सांप्रदायिकता की सवारी गांठती है, भाजपा हिंदू संप्रदायवाद की बात करती है।

जब से झारखंड राज्य अस्तित्व में आया है, वहां लंबे समय तक भाजपा का ही शासन रहा है और मुख्यमंत्री कोई न कोई आदिवासी ही रहा है। पर इन शासकों ने लूट का नये से नया रिकार्ड बनाने का ही काम किया है। इन्होंने झारखंड में इतनी लूट मचाई है जिसकी दूसरी कोई मिसाल नहीं मिल सकती। आदिवासी मुख्यमंत्रियों और मंत्रियों को शासन का कामकाज देखने का कोई अनुभव तो है नहीं। ये तो दारू पी कर अय्याशियों में मस्त रहते हैं और शासन का सारा काम अफ़सरशाहों के जिम्मे होता है जो 'परम स्वतंत्र ना सिर पर कोऊ' वाली स्थिति में अपनी मनमानी करते हैं, राज्य के संसाधनों को लुटवाते हैं और इस एवज में जो कुछ उन्हें मिलता है, उसमें से अपना हिस्सा रख कर बाकी मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों तक पहुंचाते हैं।

ऐसी स्थिति में राज्य में शिबू सोरेन का शासन हो अथवा भाजपा का या साझेदारी में उन दोनों का या कांग्रेस समर्थित शिबू सोरेन का, कोई फर्क नहीं पड़ता। ये अपने निजी फायदे के लिए पूरे राज्य को ही गिरवी रख दे सकते हैं। इसलिए इनके शासन से आदिवासियों के शोषण में कोई कमी नहीं आ सकती है और उनका कुछ भी भला नहीं हो सकता। केंद्र सरकार तो यह चाहती है कि झारखंड में अराजकता का आलम बना रहा ताकि उसकी लूट बेरोक-टोक जारी रहे। लोगों ने यह देखा ही कि संप्रग का समर्थन प्राप्त मुधु कोडा ने कैसी लूट मचाई और न जाने कहां भाग खड़ा हुआ। मधु कोडा जैसे लुटेरों के लिए इस देश में सजा का कोई प्रावधान नहीं है।

ऐसी स्थिति में अगर झारखंड में माओवादी अपना संघर्ष तेज़ करते हैं तो क्या बुरा करते हैं। मुख्यमंत्री बनने के बाद शिबू सोरेन ने माओवादियों को अपना भाई बताया था। पर क्या माओवादी शिबू सोरेन जैसे लुटेरों का समर्थन कर सकते हैं? हर्गिज नहीं। शिबू सोरेन ने उस समय यह बयान जनता को गुमराह करने के लिए दिया था।

झारखंड के लोगों का भला तभी हो सकता है जब वे हर किस्म के शोषकों और लुटेरों के खिलाफ़ संगठित हो जायें और सत्ता के लोभ में पड़े बिना लगातार अपना संघर्ष जारी रखें, भले ही इसके लिए उन्हें कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। अगर झारखंड के लोग राज्य से खनिजों के बाहर ले जाने पर पाबंदी लगा दें तो केंद्र सरकार को भी दिन में तारे दिखाई पड़ने लगेंगे।

– मनोज

माओवादी हिंसा

निर्दोषों की हत्या के लिए सरकार जिम्मेदार

छः अप्रैल को छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में नक्सली हिंसा की बड़ी घटना में सीआरपीएफ के 76 जवानों की हत्या कर दी गई थी और अभी फिर डेढ़ माह के भीतर ही नक्सलवादियों ने दंतेवाड़ा से सुकमा जा रही बस को विस्फोट कर उड़ा दिया जिसमें 36 लोग मारे गये जिनमें 15 विशेष पुलिस अधिकारी भी शामिल हैं। नक्सलवादियों के इस हमले ने पहले की भांति ही सरकार को हिला कर रख दिया है और अब गृहमंत्री कह रहे हैं कि नक्सलियों के खिलाफ़ हर तरह की कार्रवाई की जायेगी। यानी अब उनके खिलाफ़ हवाई सैन्य कार्रवाई का विकल्प भी खुला हुआ है।

दूसरी तरफ, पुलिस विभाग के अफ़सरों का कहना है कि विशेष पुलिस अधिकारियों ने निर्देशों की अवहेलना की है। उन्हें यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वे पुलिस की गाड़ियों में ही आना-जाना करें। सामान्य यात्री बसों में न बैठें, क्योंकि इस संबंध में माओवादियों को आसानी से सूचना मिल जाती है। लेकिन सुरक्षा अधिकारी इस बात को भूल रहे हैं कि जिन 76 सीआरपीएफ जवानों की हत्या कर दी गई थी, वे अपने 'शिकार अभियान' पर निकले हुए थे। वे कोई प्राइवेट बसों में सफ़र नहीं कर रहे थे। इस बार माओवादियों ने जिन लोगों की हत्या की है, उसके बारे में कहा जा रहा है कि उन्होंने निर्दोष लोगों को मार डाला है। बात सही है। विशेष पुलिस अधिकारियों के साथ-साथ बस में सफ़र कर रहे निर्दोष लोग भी मारे गये हैं और निस्संदेह माओवादियों को ऐसा करने से बचना चाहिए था। पर सवाल है कि ये जो विशेष पुलिस अधिकारी हैं, वे कौन हैं? वे भी तो आदिवासियों में से ही भर्ती किये गये हैं जिन्हें न तो कोई विशेष ट्रेनिंग दी गई है और न ही अच्छे हथियार।

पुलिस एवं अर्द्धसैन्य बलों के अधिकारियों ने इन्हें 'सलवा जुडूम' अभियान के तहत माओवादियों से लड़ने के लिए विशेष पुलिस अधिकारी का दर्जा दे रखा है और तनख्वाह देती है मात्र डेढ़-दो हज़ार रुपये। ये विशेष पुलिस अधिकारी पुलिस एवं अर्द्धसैन्य बलों के लिए 'शिखंडी' व खुफ़िया की भूमिका भी निभाते हैं।

इसलिए ये माओवादियों के निशाने पर रहते हैं। उल्लेखनीय है कि ये सभी विशेष पुलिस अधिकारी आदिवासी ही होते हैं और आदिवासियों पर जुल्म करने में सरकारी तंत्र का साथ निभा रहे हैं। इसलिए इन्हें निशाने पर लेने के लिए माओवादियों ने यात्री बस पर हमला किया जिसमें निर्दोष लोग मारे गये। यह हमला करना उनकी मजबूरी थी। देखने वाली बात है कि ये विशेष पुलिस अधिकारी कहां जा रहे थे और क्या करने जा रहे थे। अगर माओवादी इन्हें नहीं मारते तो ये माओवादियों को अपना शिकार बनाते। इनकी हत्या करना इसीलिए माओवादियों की मजबूरी थी। इसलिए एक तरह से निर्दोष लोगों की हत्या के लिए सरकार पूरी तरह से जिम्मेदार है।

छत्तीसगढ़ में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है। लेकिन सलवा जुडूम अभियान जिसका व्यापक विरोध हुआ है और खास बात है कि केंद्रीय गृह मंत्रालय के उच्च पदस्थ अधिकारियों ने भी इस आत्मघाती योजना का विरोध किया है, कांग्रेस और भाजपा की सहमति से चलाया जा रहा है। इस योजना के तहत आदिवासियों के सैंकड़ों गांवों को खाली करा कर वहां के निवासियों को बरसों से कैंपों में रखा जा रहा है जहां पुलिस, अर्द्धसैन्य बलों और विशेष पुलिस अधिकारियों द्वारा उन पर जुल्मो-सितम किये जा रहे हैं और वहां रहने वाली औरतों के साथ बलात्कार तक किया जा रहा है।

आदिवासियों से गांवों को इसलिए खाली करवाया गया है ताकि देशी-विदेशी निगमों को वहां से खनिजों की खुदाई कर उसे ले जाने में कोई बाधा न आये। स्पष्ट है कि आदिवासियों ने अपने पुरखों के गांवों को स्वेच्छा से तो छोड़ा नहीं होगा। ऐसा उनसे जबरन करवाया गया है। लेकिन सवाल है कि उन्हें कब तक कैंपों में रखा जायेगा। उन्हें तो वापस उनके गांवों में भेजा जाने से रहा। वहां तो लूट का अभियान चलाया जा रहा है। माओवादी इस लूट अभियान का विरोध कर रहे हैं और अंतिम हद तक करेंगे, भले ही इसमें वे सफल हों या असफल। पर आदिवासियों को आदिवासियों के खिलाफ़ खड़ा कर सरकार ने जो चाल चली है, उसका खामियाजा यदि निर्दोष लोगों को भुगतना पड़ रहा है तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है? क्या माओवादी? माओवादियों की घोषित नीति है अपने दुश्मनों का सफाया करना।

अगर आदिवासी भी इसमें आड़े आते हैं तो वे अपनी नीति के तहत उन्हें छोड़ेंगे नहीं। अगर वे उन्हें यानी विशेष पुलिस अधिकारियों को आदिवासी होने के नाम पर छोड़ने लगें तो अपनी कब्र खुद ही खोदेंगे। जाहिर है, अपनी कब्र खोदने के लिए वे कभी तैयार नहीं होंगे। इसलिए सरकार की यह नीति ही पूरी तरह से ग़लत है। जिन माओवादियों से राज्य की पुलिस और अर्द्धसैन्य बल लोहा ले पाने में अक्षम साबित हो रहे हैं, उनके सामने उन आदिवासी युवकों को थोड़ी लालच दे कर खड़ा कर दिया गया है जो किसी भी तरह से माओवादियों का मुकाबला कर पाने में सक्षम नहीं हैं।

सरकार आदिवासी वन्य क्षेत्र में देशी-विदेशी निगमों की लूट के लिए जो आधार बनाना चाह रही है, उसका विरोध होना नितांत स्वाभाविक है। अगर इसका माओवादी विरोध नहीं करते तो जनता के हितों की रक्षा करने के लिए कोई दूसरा संगठन अवश्य खड़ा हो जाता। जहां तक सवाल हिंसा और अहिंसा का है तो सरकार जनता के हितों की रक्षा के लिए आगे आने वाले जिन संगठनों से अहिंसा की अपेक्षा करती है तो वह स्वयं ही अहिंसक मार्ग क्यों नहीं अपनाती? वह तो गांधी जी का नाम लेकर चलती है। फिर वह अपने विरोधियों से यह अपेक्षा क्यों करती है कि वे तो अहिंसा के मार्ग पर चलें और वह हिंसा से उनका दमन करेगी। आखिर यह दोहरापन क्यों? इतिहास में इस बात के न जाने कितने उदाहरण हैं कि जब सरकार ने अहिंसक प्रतिरोध करने वालों को भी हिंसा का सहारा लेकर कुचला है। यह विचित्र विडंबना है कि सरकार अपने विरोधियों को तो शस्त्र त्याग करने के लिए कहती है और स्वयं अपने हिंसात्मक दमन यंत्र को और भी मजबूत करने की कोशिशों में लगी हुई है।

–मनोज